INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND INTERDISCIPLINARY STUDIES
(Peer-reviewed, Refereed, Indexed & Open Access Journal)
DOI : 03.2021-11278686 ISSN : 2582-8568 IMPACT FACTOR : 8.428 (SJIF 2026)

गुप्तकालीन समाज की धार्मिक स्थिति का मूल्यांकन (उतर भारत के विशेष सन्दर्भ में)

(An evaluation of the religious condition of Gupta society with special reference to North India)

राजेश कुमार पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक,
इतिहास विभाग,
श्री रावतपुरा सरकार कॉलेज आरी, झांसी
E-mail: rajeshkumarpandey2780@gmail.com

DOI No. 03.2021-11278686 DOI Link :: https://doi-ds.org/doilink/05.2026-87961113/IRJHIS2605019

सारांश :

आमतौर पर यही विश्वास गुप्त सम्राटों का व्यक्तित्व धर्म किया जाता है कि गुप्त सम्राट विष्णु के उपासक थे। इस विचार के पक्ष में कई कारण दिए जाते हैं। गुप्त सम्राटों अपने आपको परम भागवत कहते थे। इस शब्द से ज्ञात होता है कि वे विष्णु के उपासक थे। कई गुप्त सिक्कों पर लक्ष्मी का चित्र दिखाई देता है और लक्ष्मी को विष्णु की सहचरी समझा जाता है। गुप्त काल की मुहरों पर भी गरूड़ का चित्र पाया जाता है। बुद्धगुप्त के एक अभिलेख में विष्णुध्वज या विष्णु के ध्वज दण्ड का उल्लेख किया गया है। बुद्धगुप्त के एक मन्दिर में विष्णु का ध्वज का होना तथा स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ शिलालेख विष्णु की स्तुति से आरम्भ होता है। इससे ज्ञात होता है कि सम्राट विष्णु का अनुयायी था। सूर्योपपासना सिद्ध होता है कि गुप्तवंशी न वैष्णव थे न शैव थे। डॉ० दीक्षितार ने अपनी पुस्तक द गुप्त पॉलटी में उक्त विचार को स्वीकार नहीं किया है। उनका कथन है कि यद्धि अब तो परमभागवत शब्द विष्णु के अनुयायों के लिए प्रयोग किया जाता है, गुप्त काल में ऐसा नहीं था। उनके मतानुसार भगवान शब्द किसी विशेष देवता या देवी के लिए प्रयोग नहीं किया गया है। यह ऐसा शब्द है जो ईश्वर की महता का वर्णन करने के लिए प्रयोग किया गया है जिसने अपने लक्षण समस्त सृष्टि में फैलाए हुए है।

कूटशब्द : *सहचरी, उपसग, ध्वजस्तम्भ, महिषासुरमर्दिनी, विहार*

प्रस्तावना :

गुप्त–काल से दो तीन शताब्दियों पहले तीरूक्कुरान ने आदि भगवान् को संसार का सर्वप्रथम पुरूष बतायां। यह कहना कठिन है कि उसने विष्णु की ओर संकेत किया था। भगवत्भजनोत्सव पद्धति में एक लोकप्रिय श्लोक है जिसमें प्रहाद्ध परमार नारद पुण्डीरक व्यास रूक्मांगद और शौनक सभी को परमभागवत कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि यह शब्द केवल विष्णु पूजन के लिए ही प्रयोग नहीं किया गया था। परम उपसर्ग का केवल यही अर्थ है कि गुप्त सम्राट ईश्वर के अनन्य भक्त थे। केवल विष्णु की ओर कोई संकेत नही किया गया है। डॉ० दीक्षितार बताता है कि यह कारण संतोषजनक नही है कि लक्ष्मी विष्णु की सहचरी है यद्धि यह गलत भी नही है लक्ष्मी को देश की सम्पति तथा धन का प्रतीक समझना होगा। गुप्त सिक्कों पर लक्ष्मी के चित्र राज्यश्री या प्राचीन हिन्दू राजाओं की सम्पति के घोतक है। यह धारण थी कि देश

की समृद्धि उसकी सम्पति पर निर्भर है। अतः सम्पति की देवी का आर्शीवाद प्राप्त करने की गुप्त शाासकों ने चेष्टा की। यही कारण है कि गुप्त सिक्कों पर लक्ष्मी के चित्र बहुधा पाए जाते है। विष्णु की सहचरी के रूप में लक्ष्मी की धारण तो थी किन्तु उसे बढ़ाया नहीं गया था। केवल सम्पति की देवी की महत्ता की गई। विष्णु के वाहन गुरूद्ध की ओ गुप्त राजाओं ने अत्यधिक ध्यान दिया है किन्तु इसे विशेष महत्व प्रदान नहीं किया जा सकता। कारण यह है कि वाहन तो केवल उपकरण है। वैष्णव धर्म के पक्ष में इसे तर्क के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। यदि गुरूड़ विष्णु का वाहन है तो ऋषभ या बैल शिव का वाहन है। गुप्त शासकों ने नन्दी या बैल को भी अपने अभिलेखों में पर्याप्त महत्व दिया है। यह कहना तर्कसंगत है नहीं है गुप्त शासक के अनुयायी थे। उन्होंने शिव को भी श्रद्धांजलि भेंट की। बुद्धगुप्त के एक अभिलेख में विष्णु ध्वज या विष्णु के ध्वज दण्ड के उल्लेख को भी अत्यधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। सभी हिन्दू मन्दिरों में ध्वज या पताका एक अनिवार्य उपकरण है। अतः बुद्धगुप्त के एक मन्दिर में विष्णु का ध्वज का होना स्वाभाविक है। वास्तव में गुप्त शासकों ने विभिन्न देवताओं के लिए विशाल स्मारक बनवाए जिन्हें लोकप्रिय धार्मिक रीति–रीवाजों में मान्यता दी जाती थी। यही कारण है कि गुप्त शासकों तथा अन्य उपासकों द्वारा बनवाए गए प्रत्येक मन्दिर में एक ध्वजस्तम्भ है। एक और तर्क यह है कि जूनागढ़ शिलालेख में स्कन्दगुप्त ने विष्णु की स्तुति की। इसलिए गुप्त सम्राट विष्णु के अनुयायी थे। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि उस समय शिव, विष्णु या देवी की तरह कोई साम्प्रदायिक देवता नहीं थे। प्रत्येक देवी या देवता एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रकट होता था और भक्तगण उसकी पूजा करते थे। गुप्त सम्राट शिव या विष्णु या देवी या कीर्तिकेय की पूजा बिना भेद भाव के करते थे। परिस्थितियों के अनुसार किसी विशेष उद्देश्य के लिए विशेष देवता की स्तुति की जाती थी। इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि गुप्त शासकों ने केवल विष्णु की उपासना की और शेष सभी देवताओं की ओर ध्यान न दिया। सर्वसाधारण का मान्य धर्म था गुप्तकाल में भक्तों ने विष्णु तथा डॉ० दीक्षितासार के अनुसार शैव धर्म भी राजवंश तथा शिव के मंदिर साथ–साथ बनवाए। इस सम्बन्ध में नागोड़ के शिव मन्दिर अजयगढ़ में नचना कुठार के पार्वती मन्दिर और नागोध में खोह के शिव मन्दिर का उल्लेख किया जा सकता है। इन स्मारकों से ज्ञात होता है कि गुप्त खप्रक्रियावा सकवभिन रूपों पूजा करते थे। वे केवल शिव के सही नहीं वशकों को पिली पार्वती और पुत्र कार्तिपेय के भी भक्त थे। स्कन्दगुप्त के बैल प्रकार के सिक्को से ज्ञात होता है कि उसका झुकाव शिव की ओर था। यह सुझाव दिया गया है कि स्कन्दगुप्त के वे सिक्के जिनके मुख भाग पर नन्दी या बेल का चित्र है, बल्लभी में बनाए गए थे और बैल बल्लभी यक लापत का चिन्ह था। किन्तु यह विचार स्वीकार नहीं किया जाता। गुप्त काल के कई अभिलेखों में कुतान्तपरशः (यम का घातक) शब्द प्रयुक्त किया गया है। यम का घातक स्वयं शिव ही था। गुप्त अभिलेखों में गुप्त सम्राटों की तुलना प्रायः शिव से ही की जाती है। चन्द्रगुप्त द्वितीय का उदयगिरल नगुफाप्रायाभिशिव शिव अभिलेख है। इस अभिलेख का उद्देश्य था शम्भू के लिए एक मन्दिर का प्रतिष्ठान करना और शम्भू तो शिव का ही एक उपनाम है। कुमारगुप्त के कर्मदण्ड अभिलेख की पहली पंक्ति क नमो महादेवाय शब्द दिए गए है। इस अभिलेख में महादेव की पूजा के लिए अर्चना की गई थी। महाराज हस्तिन का खोह ताम्र पत्र अभिलेख भी नमो महादेवाय से आरम्भ होता है। देवगढ़ मन्दिर के प्रवेश द्वार पर गंगा तथा यमुना देवियों को शिव की अनुचरियों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रतीत होता है कि गुप्तकाल में शक्ति उपासना भी प्रचलित थी। अजयगढ़ में नचना कुठार स्थान पर एक पार्वती मन्दिर है। इस मन्दिर में शक्ति और पराकमक से भरे हुए चित्र है। उदयगिरी में सनाकानीक गुफा में भी कई मूर्तियां है। विष्णु की मूर्ति आगे महिषासुरमर्दिनी का चित्र है। इस चित्र की चार भुजाओं है। महिषी सुरमर्दिनी का चित्र दुर्गा का ही दूसरा रूप है। ब्रह्माण्ड पुराण देवी भागवत पुराण और मार्कण्डे पुराण आदि दुर्गा महाभारत के विराट् पर्व में ही नहीं भीष्म पर्व में पाए जाते हैं। सम्बन्धित है। दुर्गा की स्तुति में कहे गये श्लोक सप्तमात्रिक शब्द गुप्त अभिलेखो में बार–बार आता है। जिन सात माताओं का प्रायः उल्लेख किया गया है उनके नाम है ब्राही, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवों चामुण्डी। यह सुझाव दिया गया है कि गुप्त सम्राटों ने शक्ति की पूजा भी आरम्भ की क्योंकि उन्होंने अनुभव किया कि धर्म के एक लक्षण के रूप में शक्तिवाद वैदिक

साहित्य में मूलभूत है और बिना शक्ति के पुरूष का सिद्धान्त निष्क्रिय बन जाता है। मोर पर सवार स्कन्द तथा युद्ध देवता के रूप में स्कन्द की पूजा गुप्त काल में प्रचलित थी। कार्तिकेय या स्वामी महासेन जैसा कि उसे गुप्तकाल में कहा जाता था' को समर्पित कई मन्दिर पाए गए है। इस पद्धति की लोकप्रियता बहुत कुछ कालिदास के कारण थी जिसने अपने समय में युद्ध देवता की प्रशंसा की। गुप्त शासक इस पद्धति के भी अनुयायी थे जैसा कि वे अन्य पद्धतियों के अनुयायी थे। हमे बताया गया है कि कुमारगुप्त के बिलसाढ़ शिला स्तम्भ अभिलेख का उद्देश्य स्वामी महासेन के मन्दिर को उन्नत करना था। स्कन्दगुप्त के बिहार शिलास्तम्भ अभिलेख में स्कन्दप्रदानैः शब्द प्रयुक्त किया गया है । इससे ज्ञात होता है कि स्कन्द को देवता के रूप में स्वीकार कर लिया था और हिन्दूओं में तथा विशेषकर गुप्त शासकों मे वह सर्वप्रथम बन चुका था। गुप्त काल में गणेश की उपासना के विषय में कोई निश्चित जानकारी नही है। भूमरा गुफा के सिक्कों में गणेश की एक मूर्ति पाई गई है। यह मूर्ति इतनी जीवणविस्था में है इसे गणेश की मूर्ति समझना कठिन है। किन्तु डॉ० दीक्षितासार ने इस गणेश की मूर्ति माना है। गुप्त काल के टैराकोटा चित्रों में से एक में पार्वती को अपने दो पुत्रों गणेश तथा कार्तिकेय के साथ बैठे हुए दिखाया गया है। प्रतीत होता है कि धीरे–धीरे गणेश की मूर्ति महत्व प्राप्त करती जा रही थी। गुप्त–काल में सूर्योपसाना का विस्तृत गर्णन है। गुप्त शासकों ने सूर्योपसाना को संरक्षण प्रदान किया। स्कन्दगुप्त के इन्दौर ताम्र पत्र अभिलेख में प्रार्थना की गई है कि सूर्य जनता की रक्षा करे। उन्नत बुद्धि के ब्राहमण सूर्य देव की पूजा करते है। उसकी सीमाओं तक सुरासुर नहीं पहुंच सकते थे। जब लोग अपने वश में नहीं रहते तो वे सूर्य चेतना प्राप्त करते है। अभिलेख से ज्ञात होता है कि एक ब्राहमण देवविष्णु ने सूर्य देवता के लिए एक द्वीप अर्पित किया। एक अन्य अभिलेख में एक कहावत दी गई है कि अपौरुष शक्ति से युक्त ऋषि उसके रथ के घोड़ो पर चढ़ कर सूर्य का स्तुति गान कर रहे है।

कुमारगुप्त और बन्धुवर्मा के मन्दसौर शिलालेख में सूर्योपसाना का एक रोचक वर्णन किया गया है। शिलालेख की प्राथमिक पक्तियाँ इस प्रकार है. सूर्य तुम्हारी रक्षा करे जिसकी पूजा केवल अस्तित्व है के लिए देव समूह करते है और अपौरूष शक्तियों के आकाँक्षी सिद्ध भी जिसकी पूजा करते है, तपस्या में लीन तथा सांसारिक इच्छाओं को वश में किए हुए तथा आत्मा की अन्तिम मुक्ति के इच्छुक संन्यासी जिसकी पूजा करती है, कठिन तपस्या करने वाले तथा सब प्रकार के प्रलोभन का सामना करने की क्षमता पाने के इच्छुक ऋषि जिसकी पूजा करते है और जो सृष्टि के विनाश तथा पुनःनिर्माण का कर्ता है। उसी अभिलेख में ये पक्तियां भी आती है सूर्य को श्रद्धांजलि जिसे सत्य के ज्ञानी और परिश्रमी ब्राहमण ऋषि भी न समझ सके जिसने सभी दिशाओं में फैली अपनी किरणों से तीनो लोको की पालन की और जिसकी उदय होने के पश्चसत् गन्धर्व देव सिद्ध किन्नर और नर भी प्रशंसा करते है और जो उनकी इच्छाएँ पूर्ण करता है जो उसकी पूजा करते है। शोभायुक्त रश्मियों से सुसज्जित वह सूर्य तुम्हारी रक्षा करें। डॉ० दीक्षितसार बताते है कि गुप्त शासक हिन्दू धर्म के पक्के अनुयायी थे। उनमें साम्प्रदायिक भावना नहीं थी। सूर्योपपासना सिद्ध होता है कि गुप्तवंशी न वैष्णव थे न शैव थे। साँझे देवता सूर्य की पूजा करके उन्होंने परम्परागत हिन्दू धर्म का अनुयायी होने की घोषणा की। गुप्तवंशीयों ने अपने–अपने विचारों के अनुसार हिन्दू धर्म को संरक्षण प्रदान किया। यदि एक शासक विष्णु उपासक था तो दूसरा शिव का अनुयायी था, तीसरा मुरूग का पूजक था तो चौथा सूर्य का उपासक था। किन्तु इससे वे अन्य मतों के प्रति असिहष्णु न बने। परिणामतः बौद्ध धर्म और जैन धर्म को समान सहिष्णुता प्रदान की गई। ई–त्सिंग हमे बताता है कि श्रीगुप्त ने मृगशिखावन में एक मन्दिर केवल चीनियों के लिए बनवाया। समुन्द्रगुप्त के समय में लंका के राजा ने बोध गया में एक विहार बनाने के लिए अनुमति माँगी और अनुमति मांगी और अनुमति दे दी गई। कहा गया है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के एक कर्मचारी ने साँची में एक बौद्ध विहार भिक्षुओं के निर्वाह के लिए और एक दीपक जलाने के लिए दान दिया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में भारत यात्रा करने वाले फाह्यान ने बताया कि गान्धार में एक हिनयान बिहार था। उसने पेशावर में सैकड़ो भिक्षु रखे। शंकासी में उसने हीनयान तथा महायान के एक हजार भिक्षु तथा भिक्षुणियाँ देखी। हीनयान के अनुयायी कान्यकुब्ज के बिहारो में पाए गए। कुषी नगर में भी कुछ भिक्षु थे। पाटलिपुत्र में एक बिहार महायान के लिए और एक विहार हीनयान

के लिए था। कपिलवस्तु के विहार और स्तूप परित्यक्त और उजड़े हुए थे। यह कहना गलत है कि गुप्त काल में बौद्ध धर्म का अन्त हो गया। हमारे पास निश्चित प्रमाण है जिसके आधार पर यह सिद्धू किया जा सकता है कि गुप्त काल में बुद्ध की मूर्तिया जहाँ–तहां स्थापित की गई और पुराने बिहार पूर्ववत समृद्ध रहे। स्मारकों तथा अभिलेखों से सिद्ध होता है कि बौद्ध धर्म गुप्त काल में भी उन्नत था, क्योंकि गुप्त शासकों ने इस धर्म में या इसके सिंद्धातों में हस्तक्षेप नहीं किया। बोधगया, साँची, मथुरा और सारनाथ बौद्ध धर्म के केन्द्र बने रहे। गुप्त शासकों ने जैन धर्म को सहिष्णुता दी। किन्तु गुप्त काल के केवल दो या तीन अभिलेख ही ही प्राप्त हुए है। जिनमें भक्त जनों द्वारा जैन मूर्तियों की स्थापना का उल्लेख मिलता है। हिन्दू धर्म का पुनरूत्थान– डॉ० कीथ ने ठीक ही कहा है कि गुप्त साम्राज्य ब्राहमणों धर्म और हिन्दू धर्म के पुररूत्थान है कि बौद्ध धर्म धर्म की का प्रतीक था। इसका अर्थ यह नही है प्रधानता के युग में हिन्दू धर्म भारत से लुप्त हो गया था। यह सत्य है कि अशोक के समय से बौद्ध धर्म राज धर्म बन गया था। और हिन्दू पृष्ठभूमि में चला गया था। किन्तु अल्प कालीन ग्रहण के पश्चात् ब्राहमण शुंगों के अधीन हिन्दू धर्म फिर से उन्नत हुआ। पुष्यमित्रों द्वारा रही थी। कण्वों तथा आंधों पे भी बाहमणो धर्म को लोकप्रिय बाहमणों को बहुत दान दिए। यह आशा करना स्वाभाविक है कि जो विदेशी भारत आए वे बौद्ध धर्म की जाति प्रथा के प्रति विर ओर आकर्षित हुए होगे किन्तु वास्तव में लोक है कि कविष्क ने अप विरत्ति के कारण उसको संरक्षण दिशा किन्तु अगले शासक वासुदेव ने कैडफिसिज द्वितीय अपने अन्तिम वर्षों में बौद्ध धर्म को में ऐसा नही था। यह की तरह फिर शिवपूजन आरम्भ कर दिया। उसी प्रकार सौराष्ट्र के उत्तरकालीन शक क्षत्रप भी बौद की ओर अधिक शुके हुए थे। उन्होंने हिन्दुओं की भाषा संस्कृत बौद्ध धर्म की अपेक्षा हिन्दू धर्म को संरक्षण दिया और बौद्ध मतावलम्बियों की भाषाओं को संरक्षण नहीं दिया। रूद्रदमन का गिरनार अभिलेख संस्कृत में हो है। महायान के उदय से भी बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म के निकट आ गया। बौद्ध प्रचार की भाषा पाली के स्थान पर महायानवादियों वे अपनी पुस्तकों में संस्कृत भाषा का प्रयोग किया। संस्कृत को स्वीकृति ब्राहमणों के लिए लिए एक विजय थी। धर्म भाषा और साहित्य की उन्नति साथ–साथ ही होती है। अतः संस्कृत की लोकप्रियता से हिन्दू धर्म का कार्य आगे बढ़ा। महायान के अन्तर्गत बौद्ध धर्म में मूर्ति पूजा का प्रचलन किया गया। बुद्ध चारों और अंसख्य बोधिसत्व आ गए जो बुद्ध तथा उसके उपासकों के बोच मध्यस्थ थे। इससे भी बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म के अधिक निकट आ गया। हिन्दू धर्म के विलीन होने की सम्भावना बढ़ गई।

गुप्त वंश के उदय से पहले भी भारवासियों ने गंगा तट एर दशावमेध घाट पर दस अश्वमेघ यज्ञ करके हिन्दू धर्म को लोकप्रिय बनाया था किन्तु हिन्दू धर्म को राज संरक्षण प्रदान करने और उसे राज्य धर्म बनाने का कार्य गुप्त वंश के लिए हो रह गया था। गुप्तवंशी धर्मान्ध नहीं थे और उन्होंने सभी के प्रति धर्मिक सहिष्णुता का प्रदर्शन किया वास्तव में समुन्द्रगुप्त ने प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुबन्धु को संरक्षण दिया। किन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि गुप्त शासक धर्मनिष्ठ हिन्दू थे। उनका पथ–प्रदर्शन प्रायः ब्राहमण परामर्शदाता करते थे। वे स्वयं संस्कृत भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय को राजधिराज कहा गया है जो राजा और ऋषि का मिश्रण है। समुन्द्रगुप्त और कुमारगुप्त ने अश्वमेघ यज्ञ किए। ऐसे वातावरण में ही हिन्दू धर्म ने तीव्र प्रगति की। विभिन्न हिन्दू देवी–देवताओं की पूजा के लिए मन्दिर बनाए गए। विष्णु के अवतारों की पूजा को अत्यधिक महत्व दिया जाने लगा। कहा जाता था कि दानवों या निकृष्ट शक्तियों से संसार की रक्षा करने का उल्लेख किया गया है। मीन या मछली के रूप में विष्णु समय–समय पर अवतार लेते है। पुराणों में विष्णु में मानवता के पिता मनु की विश्वव्यापी बाढ़ से रक्षा की। कछुए के रूप में विष्णु ने अपनी पीठ पर मन्दर पहाड़ को सम्भाला जिसे देवताओं ने सागर से मानवता के हित के लिए चौदह पदार्थ प्राप्त करने के लिए मन्थन करते समय प्रयुक्त किया था। वृष नरसिंह तथा वामान रूप में विष्णु पृथ्वी को विध्वंस करने के इच्छुक दानवों का वध किया। ब्राहमण धर्म के विकांता परशुराम के रूप में विष्णु ने क्षत्रियों को नष्ट किया। विष्णु पहले छः अवतार पूर्णतः पौराणिक थे। अगले तीन अवतार ऐतिहासिक तथाबार तीय व्यक्ति थे। विष्णु के उपासक बुद्ध को भी विष्णु का अवतार मानते थे जिसे दानवों तथा अपराधियों को विष्णु

कर करने के लिए भेजा गया था। कल्कि अवतार अभी भविष्य को गोद में था। प्रत्येक देवता की एक सहचरी थी। विष्णु की सहचरी लक्ष्मी थी, समृद्धि तथा सौन्दर्य की देवी जब सागर से निकली तब सुरों तथा असुरों ने इनका मन्थन किया। विष्णु को कलाकृतियों में विश्वनाग शेष या अन्नत पर लेटे हुए या वाहन गुरूड़ पर सवार दिखाया गया था। देवताओं को बहुभुज और बहुमुख वर्णन करने की प्रवृत्ति इस युग में लोकप्रिय हो गई। देवता अपने हाथों में अपनी शक्ति के लक्षण उठाए होता है यथा वज्र मण्डल शंख कमल और त्रिशूल। शालिग्राम को विष्णु समझा जाता है और उसका पवित्र पौधा तुलसी है। शिव या महादेव को विष्णु का विलोम समझा जाता था। वह योगियों को भगवान है जो विश्वात्मा में विलीन होने के लिए आत्म चिन्तन करते है। हिमालय की बर्फीली पहाड़ियों में वह अनन्त युगों तक तप करता है शरीर पर भस्म लगाता है खोपड़ियो का माला पहनता है और उसकी लम्बी जटाओं से गंगा बहती है। शिव को उर्वरता तथा प्रजोत्पादन का देवता भी समझा जाता है। लिंग के रूप में उसकी पूजा की जाती है और उसका वाहन नन्दी या बैल है। शिव को कभी–कभी नटराज या नृत्य देवता के रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है। उसकी सहचरी पार्वती या उमा है जो अलौकिक सौन्दर्य तथा माधुय की देवो है। कालि या दुर्गा के रूप में रक्तिम तथा अश्लील रीतियों से उसकी पूजा की जाती है।

ऋग्वेद में उल्लिखित उत्तरी भारत में आर्य–दस्यु संघर्ष के समान दक्षिणी और उत्तरी भारत के सांस्कृक्तिक संपर्क के तत्व नहीं मिलते। संगम साहित्य से ज्ञात होता है कि तमिल देश में वैदिक संस्कृति का स्वागत किया गया।

दक्षिणी और उत्तरी भारत के सांस्कृतिक संपर्क के संदर्भ में अगस्त्य ऋषि की अनुश्रुत्ति महत्वपूर्ण है। अगस्त्य आश्रम हिमालय से दक्षिण की ओर विस्तृत हुआ। पश्चिमी घाट का दक्षिणमालार पर अगस्त्य आश्रम स्थित है। यहां से हिंदचीन तक इस ऋषि के आश्रम के पहुंचने की परंपरा है। दक्षिण में आज भी अगस्त्य की विशेष रूप से उपासना होती है। अनेक मंदिर अगस्यस्वा की नाम से प्रसिद्ध है जिनमें शिव की मूर्तियां स्थापित है। इनको अगस्त्य ऋषि द्वारा स्थापित माना जाता है। अगस्त्य का ऐतिहासिक रूप महाभारत तथा रामायण में वर्णित है। ऋग्वेद में वे मंत्रद्रष्टा ऋषि है। उनकी पत्नी लोपामुद्रा तथा उनकी बहन का भी वर्णन उसमें मिलता है।

अगस्त्य द्वारा दक्षिण में ब्राहमण धर्म तथा वैदिक संस्कृति पहुंचाने के संदर्भ में तीन आख्यान परंपरित रूप से प्रसिद्ध है, जिनमें पहला है विंध्य पर्वत को नतमस्तक स्थिति में छोड़कर दक्षिण से कभी वापस न आना। दूसरे अगस्त्य द्वारा इल्वल तथा वातापि नामक राक्षसों का विनाश करना। इंद्र के समान पुत्र प्राप्त होने का वरदान न देने के कारण इल्वल अगस्त्य से नाराज होकर ब्राहमणों का विनाश करना। इंद्र के समान पुत्र प्राप्त होने का वरदान न देने के कारण इल्वल अगस्त्य नाराज होकर ब्राहमणों का विनाश कर रहा था। तीसरे अगस्त्य द्वारा समुद्र पी जाने की कथा है जिससे देवताओं को उन असुरों का विनाश करने में सफलता मिली जो समुद्र में छिप गए थे। अगस्त्य के ही समान कौण्डिन्य ऋषि का भी दक्षिण भारत से पर्याप्त संबंध प्रतीत होता है। वैदिक धर्म के प्रसार के संदर्भमें इस गोत्र के ब्राहमणों का पर्याप्त योगदान है। दक्षिण भारतीय भाषाओं में उत्कीर्ण अनेक शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों में इस गोत्र के ब्राहमणों को भूमिदान देने के उल्लेख है। तंजौर जिले के पूजारूर गांव में स्थित दूसरी या तीसरी ईसवी में एक कौण्डिन्य परिवार का विस्तृत विवरण आबूर मूलम किलार के एक गीत से प्राप्त होता है जिसमें इस परिवार द्वारा नित्य धर्मिक कृत्य तथा यज्ञ करने का उल्लेख है। संगम काल में ब्राहमण पाड्य राजवंशों के पुरोहित के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे। एक परंपरा के अनुसार पांड्य राजवंशों के पुरोहित अगस्त्य गोत्र के ब्राहमण होते थे। ऐसी ही एक परंपरागत अनुश्रुति है कि तमिल भाषा तथा व्याकरण की उत्पत्ति तोल्काप्पियं के लेखकों तथा इन संगम कृतियों पनासकाकार नच्चिरक्किर्नियर (14वीं शताब्दी ईसवी) ने उत्तरी ऋषि (अगस्त्य) संबंध द्वारका से स्थापित किया है। साथ ही वेलिय दुरिकावारी कृष्ण के वंशज माने गए है। अगस्त्य ने द्वारका से अठारह राजाओं के समूह वेलिर के अठारह कुलों एवं अरूवालरों का नेतृत्व किया। उन्होंने मार्ग में आने वाले वनों का नाश किया तथा उन्हें कृषि योग्य बनाया। महाभारत तथा पुराणों में वर्णित आख्यानों में भी दक्षिण भागों में वन जलाने तथा कृषि के विस्तार से अगस्त्य का संबंध स्पष्ट रूप से स्थापित है। इससे दक्षिण में अगस्त्य द्वारा

कृषि विस्तार की परंपरा की पुष्टि होती है। अगस्त्य ने की है। दक्षिण भारत पर वैदिक धर्म का गहरा प्रभाव पड़ा। कुछ यज्ञों तथा कर्मकांडों का वैदिक रूप ज्यों का त्यों बना रहा किंतु इस काल के अनेक धार्मिक कृत्य विश्वास तथा उपासना पद्धति में दक्षिण की प्राचीन परंपरा का समन्वय भी हुआ। ब्राहमण धर्म को राजाओं द्वारा पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। वे अपने अध्ययन में लगे रहते थे। वैदिक मत को मानने वाले ब्राहमणों का प्रायः विरोधी संप्रदाय के लोगों से वाद–विवाद होता था। संभवतः यह विरोधी संप्रदाय बौद्ध धर्म वालों का था। संगम साहित्य के अनुसार वैदिक अथवा ब्राहमण धर्म का सर्वाधिक प्रचलन था। दक्षिण भारत में मुरूगन की उपासना सबसे प्राचीन है। बाद में मुरुगन का नाम सुब्रहाण्य भी मिलता है और स्कंद–कीर्तिकेय से इस देवता का एकीकरण होता है। उत्तरी भारत में स्कंद–कीर्तिकेय को शिव तथा पार्वती के पुत्र के रूप में माना गया है। स्कंद–कीर्तिय के उत्पन्न होने के बारे में रामायण महाभारत, पुराण तथा अन्य ग्रंथों में अनेक कथाएं दी गई है। कहीं कोर्तिकेय को अग्नि का कहीं कृतिका का, कहीं गंगा तथा कहीं शिव का पुत्र बताया गया है। महाकाव्यों तथा पुराणों में दी गई स्कंद कोर्तिकेय के जन्म के कथाएं तमिल परंपरा में मुरूगन के संबंध में स्वोंकार कर ली गई है। यह और भी महत्वपूर्ण तथ्य है कि तमिल में मुरूगु का अर्थ भी कुमार है जो वेद तथा वैदिक परंपरा में स्कंद का एक नाम है। मुरूगन का दूसरा नाम जेलन है। वेलन का संबंध वेल से है जिसको अर्थ वहीं है। यह इस देवता के अस्त्र को शक्ति कहा गया है तथा स्कंद काराप्रतिमाओ का प्रमुख अस्त्र है। महाभारत तथा पुराणों में स्कंद यह शस्त्र प्रदर्शित भी होता है। यहां वेल का प्रतिमाओं में समानता प्रतीत होता है। दक्षिण की परंपरा में भी मुरुगन को प्रतीक मुर्गा (कुक्कुट) है और इन्हें पर्वत शिखर पर कोड़ा करना बहुत प्रिय है। मुरू जनजाति की स्त्री भी है। आदिच्नल्लूर से प्राप्त शव कलश के मुरूगन को पत्नियों में एक कुरवम नामक पर्वतीय मिलने वाले कांसे के के मुखखंड यह संकेत करते है कि मरूगन का स्वर्णपव रागैतिहासिक काल से ही किसी–न–किसी रूप में प्रचलितवासना है। किसी व्रत के पूर्ण होने पर आज भी लोग इसचलित रही उपासना करते है। मरूगन की उपासना में वेलनेसह प्रकार के उल्लासमय नृत्य वह पुजारी आत्मविभोर होकर कराया था जिसके तर पर वेलन (मुरूगन) आकर बैठ जाता था। यह नृत्य मुरूगन को उपासना के अत्यंत प्राचीन रूप से अंग रहा होगा। धार्मिक कुत्यो तथा अनुष्ठानों में गायन और नृत्य का प्रचलन था। पुहार के वार्षिक उत्सव में इंद्र की भी विशेष प्रकार की पूजा होती थो। बहेलिए जाति के लोग कोर्रलै की और पशुचारण जाति के लोग कृष्ण की नृत्य तथा गायन के साथ उपासना करते थे।

उत्तर भारत की ही भांति दक्षिण में भी अनेक ग्रामदेवताओं को पूजा प्रचलित थी। इन देवताओं के लिए मुर्गे, भेड़ तथा भैस की बलि दी जाती जात थी। विशप हाइटहैड के मतानुसार आदिम जीववाद (एनिमिज्म) के बाद पशुचारण जीवन–पट्टति की प्रधानता होने पर, टोटेम (गणचिन्ह) पर विश्वास का काल प्रारंभ हुआ। इसी काल में बलि प्रथा भी प्रचलन आई। बलि–प्रथा के आविर्भाव के बारे में पर्याप्त मतमतांतर है। किंतु संगम काल में ब्राहमण धर्म के प्रभाव के कारण जो धार्मिक समन्वय प्रारंभहुआ उस प्रकिया में अनेक प्रकार की टोटेम पूजा धीरे–धीरे ब्राहमण धर्म से समाहित हो गई। फिर भी बलि–पंरपरा बाद तक चलती रही। महाकाव्यों तथा पुराणों की कथाओ को दक्षिण के विशिष्ट सामाजिक परिवेश के अनुरूप प्रस्तुत किया गया। उदाहरण के लिए परशुराम ने पिता के कहने पर माता रेणुका का सर काट दिया और उसके सर के साथ एक परिया स्त्री का सर भी कट गया क्योंकि मरियम्मा (दक्षिण में परशुराम की माता का नाम मरियम्मा है) ने दुःखी परिया स्त्री का आलिंगन कर लिया था। बाद में जब पिता ने परशुराम की माता को पुनर्जीवन देने की स्वीकृति दी तो परशुराम की भूल से सद अदल बदल हो गया। मरियम्मा (परिया शरीर पर ब्राहमण स्त्री का सर) बलिदान में भैस की अपेक्षा बकरे तथा मुर्गे को अधिक अधिक पंसद करती थी और येलम्मा के भेंस की बलि पंसद थी। मरियम्मा शीतला (चेचक से संबधित देवी) थी जबकि येलम्मा का अर्थ होता है कि सीमा की महिला। हाइटहैड के अनुसार यह कथा संभवतः आर्यों के दक्षिण आने पर ही आर्य तथा द्रविड़ धार्मिक तत्वों के सम्मिश्रण का परिचायक है। आगे इस विद्वान का कथन है कि परिया शरीर पर ब्राहमण सर शैव उपासना का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है, जबकि परिया सर वाला ब्राहमण शरीर

कोई प्राचीन द्रविड़ उपासना की परंपरा का संकेत करता है जिस पर ब्राहमण धर्म के विश्वास तथा सिद्धांतों का प्रभाव भी पीड़ा होगा। भैस की बलि जो परिया को प्रिय थी, प्राचीन द्रविड़ परंपरा की दोतक है। इसके अतिरिक्त शिव, अर्धनारीश्वर, अनंतशायी विष्णु, कृष्ण, बलराम, आदि की भी उपासना बाद में पर्याप्त लोकप्रिय विष्णु की पूजा में तुलसी तथा ईश्वर के प्रसाद को प्राप्त करने करते थे। अनेक लोग सन्यासी मणिमेहले में कापालिक शेव हुई। पदिटुप्पतु से ज्ञात होता है घंटे का उपयोग किया जाता था। के लिए लोग मंदिर में उपासना का जोवन व्यतीत करते थे। सन्यासियों की चर्चा है। लोगो को कर्म, पुनर्जन्म, भाग्यवाद पर विश्वास था। बौद्ध धर्म का प्रसार पत्थर बौद्ध धर्म के प्रसार के संबंध में अशोक के अभिलेख से हमे पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। अशोक ने तमिल प्रदेश में भी धर्म प्रचारक भेजे थे। वहां पाड्य, चोल केरलपुत्र, सतियपुत्र आदि पड़ोसी राज्यों में उसने मनुष्यों तथा पशुओं के लिए चिकित्सालय बनवाने का प्रबंध किया। दक्षिण में बौद्ध धर्म के प्रचार तथा विकास का प्रमाण हमे पश्चिमी घाट के पर्वतो पर काटकर बनाए गए चौत्यों तथा विहारों के भव्य अवशेषों से प्राप्त होता है। ऐसे निर्माण दक्षिण से लेकर पूना के निकट तक विद्मान है। आंध्र में कृष्णा नदी के निचले क्षेत्रों में भी तीसरी शती में बौद्ध धर्म का प्रसार होने लगा। सातवाहन नरेश ये अवशेष मिलते है। दक्कन में भी ई० के काल में भी यह पल्लवित होता रहा। ईसा की प्रथम शताब्दीयों में दक्कन क्षेत्र में बौद्ध धर्म अत्यंत शक्तिशाली था। अमरावती के स्तूपों को इसी काल में अलंकृत शक्तिशाली था। काल के अभिलेखों में अनेक बौद्ध सन्यासियों के नाम याडिस है जो धर्म–प्रचार में लगे थे। स्तूप बौद्ध वृक्ष बुद्ध का चरचिन्ह त्रिशूल (जो त्रिरत्न का प्रतीक है), धर्मचक आदि बौद्ध धर्म से संबंधित अनेक तत्व इन स्थलों से प्राप्त होते है। इस काल में मूर्तिकला का यथोष्ट विकास हुआ। आराध्य देवता के सम्मुख स्त्री–पुरूष घुटने के बल बैठकर अथवा साष्टांग रूप से प्रस्तुत किए गए है। इन मूर्तियों में भक्तिभाव में डूबी हुई आनंदमय मुख–मुद्रा की सफल अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। नागार्जुनकोंड गोली घंटाशाला (आंध्र प्रदेश) आदि तथा कांचीपुरम में बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध केंद्र बने। बाद में इन स्थानों ने महायान संप्रदाय का विकास हुआ। दक्षिण में महायान बौद्ध संप्रदाय के अनेक सुप्रसिद्ध आचार्य हुए है।

लगभग दूसरी शती ई० के मध्य में नार्गाजुन ने माध्यमिक सिंद्धांतों का प्रतिपादन करके शून्यवाद दर्शन को विकसित किया। इसका शिष्य आर्यदेव नालंदा में बौद्ध केंद्र का प्रधानाचार्य नियुक्त हुआ। जीवन के अंतिम दिनों में वह कांची में रहने लगा और दूसरी शती में उसका देहावसान हुआ। इसने चतुः शतक नामक ग्रंथ की रचना की। दक्षिण के ही बुद्धपालित नामक एक अन्य महायान आचार्य ने नागार्जुन के मूलमाध्यमिक सूत्र पर भाष्य लिखा। भाव विवेक नामक आचार्य ने तर्कज्वाला शीर्षक ग्रंथ की रचना की। चंद्रकीर्ति नालंदा का मठाध्यक्ष था और उसने दक्षिण में आकर अनेक विद्वानों को धार्मिक वाद–विवाद में परास्त किया। इसने दक्षिण में अनेक विहारो की स्थापना की थी। पाचवी शती के अंत अथवा इसके कुछ बाद के समय का सुप्रसिद्ध बौद्ध आचार्य दिड्नाग मूलतः कांचीपुरम का ब्राहमण था। इसने प्रमाण समुच्चय, न्यायप्रवेश तथा प्रज्ञापारमितापिण्डार्थ नामक ग्रंथ की रचना की। धर्मपाल भी कांची का ही बौद्ध आचार्य था और दिड्नाग का शिष्य था। ये बौद्ध विद्वान संगम काल के बाद के है किंतु इन आचार्यों के उदय से यह ज्ञात होता है कि दक्षिण बौद्ध धर्म के केंद्र पहले से ही विकासशील रहे होंगे जिसके फलस्वरूप यहां बौद्ध साहित्य का पल्लवन संभव हुआ। शिलप्पदिकारम तथा मणिमेहलै महाकाव्यों तथा कावेरीप्पट्टिणं (तंजावूर) में भी बौद्ध तथा जैन संस्थाओं के उल्लेख मिलते है। जैन धर्म का प्रसार जैन परंपरा में स्वयं महावीर द्वारा दक्षिण में धर्म–प्रसार का उल्लेख है, किंतु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही मिलता। मैसूर में श्रवण वेलुंगोला नामक स्थान से प्राप्त छठी शती के एक अभिलेख में भद्रबाहु का बिहार से दक्षिण जाने का उल्लेख है। इतिहासकारों में यह मान्य है कि मौर्य काल में ही जैन संप्रदाय भी सुदूर दक्षिण पहुंचा। एक जैन परंपरा में में मौर्य वंश के प्रथम शासक चंद्रगुप्त द्वारा अपने शासन के अंतिम समय जैन धर्म ग्रहण करने का वर्णन प्राप्त होता है। चंद्रगुप्त मौर्य ने शासन त्यागकर कर्णाटक में श्रवण बेल्गोला नामक स्थान पर सन्यासी का जीवन व्यतीत किया तथा उपवास करके प्राण त्यागदिया। एक अन्य परंपरा के अनुसार महावीर की मृत्यु के दो सौ वर्ष बाद मगध में

भयंकर अकाल पड़ा जो बारह वर्षों तक चलता रहा। जैन सप्रदाय के काफी लोग उस समय के सुप्रसिद्ध आचार्य भद्रबाहु के साथ दक्षिणी भारत चले गए। दक्षिण में इन प्रवासियों ने जैन धर्म का प्रसार किया। अकाल के बाद प्रवासी जैन दक्षिण से वापस आए किंतु उत्तर और दक्षिण के जैनियों में मतभेद के कारण इनमें विभाजन हो गया। दक्षिण के जैन दिगंबर तथा उत्तर के श्वेताबंर संप्रदाय में विभक्त हो गए। भद्रबाहु तथा चंद्रगुप्त मौर्य के दक्षिण जाने का उल्लेख बाद में अनेक अभिलेखों के अतिरिक्त हरिषेण (839ई0) के बृहद्कथाकोष में भी है। श्रवण बेलगोला में एक चंद्रगिरी पर्वत तथा भद्रबाहु गुफा है। चंद्रगुप्त बस्ती के अग्रद्वार पर भद्रबाहु तथा चंद्रगुप्त के जीवन से संबंधित नब्बे चित्र उत्कीर्ण है। चंद्रगुप्त के बाद के काल में जैन धर्म की प्रगति के संबंध में जानकारी का कोई स्त्रोत नहीं प्राप्त होती है। अशोक के कलसी शिला अभिलेख 13 के अनुसार यवन प्रदेश को छोड़कर उनके राज्य में सभी स्थानों में ब्राहमण तथा श्रमण विद्मान थे। श्रमण शब्द बौद्ध तथा जैन दोनों संप्रदायों के मुनियों के लिए प्रयुक्त हो सकता है। इसे माना जाए तो अशोक के समय में जैन जैन धर्म के दक्षिण में में प्रचलित होने का परोक्ष संकेत मिलता है। अशोक का पोता (सम्प्रति) श्वेतांबर जैन संप्रदाय को मानता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने दक्षिण भारत में जैन धर्म के प्रचारकों को भेजा था। यह श्वेतांबरी का दक्षिण भारत पहुंचने का सबसे पहला उल्लेख है। सम्प्रति को श्वेतार्बर मत में दीक्षा देने वाला आचार्य सुहस्तिन था। सुहस्तिन के बाद ई० पू० प्रथम शती के लगभग कालकाचार्य का दक्कन में पेन्थ नामक स्थान के राजा के यहां जाने का उल्लेख है। संभवतः यह हाल नामक सातवाहन शासक के काल की घटना है। भद्रबाहु के बाद जैन गुरूओं की सूची मात्र प्राप्त होती है ई० पू० प्रथम शती में अथवा ईसवी संवत की प्रथम शती में कुन्दकुन्द नामक जैन गुरू के महत्वपूर्ण कार्य का विवरण प्राप्त होता है। किंतु कर्णाटक में भी जैन धर्म के प्रसार तथा प्रचार केबारे में तीसरी शती ईस्वी से पहले कोई पक्का प्रमाण नही मिला। बाद में कदंब तथा गंग राजाओं के काल में जैन धर्म को राजाओं से यथेष्ट संरक्षण प्रोत्साहन मिला। जैन मतावलंबियों को दान में भूमि भी मिली। कर्णाटक तथा तमिल प्रदेश में परवतों सदियों में स्थापत्य कला साहित्य आदि की प्रगति में जौलियों का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. बासुदेव उपाध्याय – प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन।
2. एल०पी० शर्मा– प्राचीन भारत।
3. राजबली पाण्डेय प्राचीन भारत
4. एस राधा कृष्णन –रीलडियन एण्ड सोसाइटी
5. रोमिला थापर –प्राचीन भारत का इतिहास
6. झा एवं श्रीमाली– प्राचीन भारत
7. डा० रामवृक्ष सिंह– प्राचीन भारत
8. डॉ० शिवस्वरूप सहाय – प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन, दिल्ली 2001
9. डॉ० राजेन्द्र पाण्डेय –भारत का सांस्कृतिक इतिहास वाराणसी 1983।
10. एस० एन० दास गुप्ता– भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग। जयपुर 1978
11. सत्यकेतु विद्यालंकार –प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन, नई दिल्ली 2005.
12. के० सी० श्रीवास्तव –प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति
13. राधा कुमुद मुखर्जी– प्राचीन भारत
14. आर० सी० मजुमदार– एनसीएन्ट इंडिया
15. वासुदेव उपाध्याय –गुप्त साम्राज्य का इतिहास